संबन्धः ॥ १९१ ॥ शत्रोरपि सुतस्सखा रक्षितव्यः ॥ १९२ ॥ यावच्छत्रोश्छिद्रं पश्यति तावद्धस्तेन वा स्कन्धेन वा वाह्यः ॥१९३॥ शत्रुं छिद्रे परिहरेत् ॥ १९४ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ १९५ ॥ छिद्रप्रहारिणश्शत्रवः ॥ १९६ ॥ हस्तगतमपि शत्रुं न विश्वसेत् ॥ १९७ ॥

अर्थका संग्रह करनेमें, शत्रुओंका साथही न करना चाहिये ॥ १८९ ॥ अर्थकी प्राप्ति होजानेपर भी शत्रुका विश्वास न करे ॥ १९० ॥ निश्चित सम्बंध, अर्थकेही अधीन होता है ॥ १९१ शत्रुका भी पुत्र यदि अपना मित्र हो, तो उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १९२ ॥ जबतक शत्रुके दोष या उसकी निर्बलताको नहीं देख लेता ; तबतक उसको अपने हाथ या कन्धेसे वहन करे ॥१९३ ॥ जहां शत्रुकी दुर्बलता देखे, वहीं उसपर प्रहार करे ॥ १९४ ॥ अपने दोष या दुर्बलताको कभी प्रकट न होने देवे ॥ १९५ ॥ जो छिद्र (दोष या दुर्बलता) पर प्रहार करनेवाले होते हैं, वेही शत्रु समझने चाहियें ॥ १९६ ॥ अपने हाथमें आये हुए शत्रुका भी कभी विश्वास न करे ॥ १९७ ॥

स्वजनस्य दुर्वृत्तं निवारयेत् ॥ १९८ ॥ स्वजनावमानोपि मनस्विनां दुःखमावहति ॥ १९९ ॥ एकाङ्गदोषः पुरुषमवसादयति ॥ २०० ॥ शत्रुं जयति सुवृत्तता ॥ २०१ ॥ निकृतिप्रिया नीचाः ॥ २०२ ॥ नीचस्य मतिर्न दातव्या ॥ २०३ ॥ तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ २०४ ॥ सुपूजितोपि दुर्जनः पीडयत्येव ॥ २०५ ॥ चन्दनादीनपि दावोऽग्निर्दहत्येव ॥ २०६ ॥

अपने आदमियोंके दुर्व्यवहारको रोके ॥ १९८ ॥ अपने आदमियोंका अपमान भी, मनस्वी पुरुषोंके लिये दुःखदाई होता है १९९ ॥ एक अंगका दोष भी पुरुषको नष्ट करदेता है ॥ २०० ॥ सद्व्यवहारही शत्रुको जीतता है ॥ २०१ ॥ नीच पुरुषोंको तिरस्कार करनाही अच्छा मालूम होता है ॥ २०२ ॥ नीच पुरुषको कभी सुमति न देनी चाहिये ॥ २०३ ॥ और न उनपर कभी विश्वास करना चाहिये ॥ २०४ ॥ सत्कार किया हुआ भी दुष्ट पुरुष, पीड़ाही पहुंचाता है ॥ २०५ ॥ जंगलकी आग, चन्दन आदिको भी जलाही देती है ॥ २०६ ॥

कदाऽपि पुरुषं नावमन्येत ॥ २०७ ॥ क्षन्तव्यमिति पुरुषं न बाधेत ॥ २०८ ॥ मंत्रोऽधिकं रहस्युक्तं वक्तुमिच्छन्त्यबुद्धयः

॥ २०९ ॥ अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ॥ २१० ॥ प्रज्ञाफलमैश्वर्यम् ॥ २११ ॥ दातव्यमपि बालिशः परिक्लेशेन दास्यति ॥ २१२ ॥ महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ॥ २१३ ॥ नास्त्यधृतेरैहिकामुष्मिकम् ॥ २१४ ॥

पुरुषका कभी भी तिरस्कार न करे ॥ २०७ ॥ 'क्षमा करदेना चाहिये' इसप्रकार पुरुषको कभी बाधित न करे ॥ २०८ ॥ अपने मालिकके द्वारा एकान्तमें कही हुई बातको, बुद्धिहीन पुरुष, बहुत अधिक कहना चाहते हैं ॥ २०९ ॥ अनुराग अर्थात् प्रेम, परिणामके द्वाराही प्रतीत होता है ॥ २१० ॥ बुद्धिकाही परिणाम ऐश्वर्य होता है ॥ २११ ॥ देने योग्य वस्तुको भी, मूर्ख पुरुष, बड़े क्लेशसे देता है ॥ २१२ ॥ महान ऐश्वर्यको प्राप्त करके भी धैर्यहीन पुरुष नष्ट होजाता है ॥ २१३ ॥ धैर्यहीन पुरुषको न ऐहलौकिक और न पारलौकिकही सुख मिल सकता है ॥ २१४ ॥

न दुर्जनैस्सह संसर्गः कर्तव्यः ॥ २१५ ॥ शौण्डहस्तगतं पयोप्यवमन्येत ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धिः ॥ २१७ ॥ मितभोजनं स्वास्थ्यम् ॥२१८॥ पथ्यमपथ्यं वाजीर्णे नाश्नीयात् ॥ २१९ ॥ जीर्णभोजिनं व्याधिर्नोपसर्पति ॥२२०॥ जीर्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ॥ २२१ ॥ अजीर्णे भोजनं दुःखम् ॥ २२२ ॥ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ॥ २२३ ॥

दुर्जनोंके साथ कभी संसर्ग न करना चाहिये ॥ २१५ ॥ कलालके हाथमें गया हुआ दूध भी बुरा समझा जाता है ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटोंमें अर्थको निश्चय करनेवाली ही, बुद्धि होती है ॥ २१८ ॥ परिमित भोजन करना ही स्वास्थ्य समझना चाहिये ॥ २१८ ॥ अजीर्ण होनेपर, पथ्य या अपथ्य कुछ न खावे ॥ २१९ ॥ पहिला खायाहुआ पचजानेपर खानेवाले पुरुषको कोई व्याधि नहीं सताती ॥ २२० ॥ बूढ़े शरीरमें बढ़तीहुई व्याधि की, कभी उपेक्षा न करनी चाहिये ॥ २२१ ॥ अजीर्ण होनेपर भोजन करना दुःखदाई होता है ॥ २२२ ॥ व्याधि शत्रुसे भी अधिक कष्टप्रद होती है ॥ २२३ ॥

दानं निधानमनुगामि ॥ २२४ ॥ पटुतरे तृष्णापरे सुलभमतिसन्धानम् ॥ २२५ ॥ तृष्णया मतिश्छाद्यते ॥ २२६ ॥ कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात् ॥ २२७ ॥ स्वयमेवावस्कन्नं

कार्यं निरीक्षेत ॥२२८॥ मूर्खेषु साहसं नियतम् ॥२२९॥ मूर्खेषु विवादो न कर्तव्यः ॥ २३० ॥ मूर्खेषु मूर्खवत्कथयेत् ॥ २३१ ॥ आयसैरायसं छेद्यम् ॥ २३२ ॥ नास्त्यधीमतस्सखा ॥ २३३ ॥

दान, कोशका अनुगामी होता है। अर्थात् जैसा अपना कोश हो, उसके अनुसार ही दान कियाजाता है ॥ २२४ ॥ जो पुरुष अत्यन्त तृष्णापर हो, अर्थात् जिसकी तृष्णा बहुत बढ़ीहुई हो, उसको वशमें करलेना, बहुत आसान होता है ॥ २२५ ॥ तृष्णा, बुद्धिको ढक लेती है ॥ २२६ ॥ बहुतसे कार्योंके होनेपर उनमेंसे उसी कार्यको करना चाहिये, जो भविष्यमें अधिक फल देनेवाला हो ॥ २२७ ॥ आक्रमण आदिके कार्यका, राजा स्वयं ही निरीक्षण करे ॥ २२८ ॥ मूर्खोंमें निश्चित ही साहस (लड़ाई झगड़ा करनेका माद्दा) होता है ॥ २२९ ॥ मूर्खोंमें कभी विवाद न करना चाहिये ॥ २३० ॥ मूर्खोंमें मूर्खके समान ही कहना चाहिये ॥ २३१ ॥ लोहेको लोहेसे ही काटाजासकता है ॥ २३२ ॥ बुद्धिहीन पुरुषका कोई मित्र नहीं होता ॥ २३३ ॥

धर्मेण धार्यते लोकः ॥ २३४ ॥ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुगच्छतः ॥ २३५ ॥ दया धर्मस्य जन्मभूमिः ॥ २३६ ॥ धर्ममूले सत्यदाने ॥ २३७ ॥ धर्मेण जयति लोकान् ॥ २३८ ॥ मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति ॥ २३९ ॥ धर्माद्विपरीतं पापं यत्र यत्र प्रसज्यते तत्र धर्मावमतिर्महती प्रसज्यते ॥ २४० ॥ उपस्थितविनाशानां प्रकृत्या कार्येण लक्ष्यते ॥ २४१ ॥ आत्मविनाशं सूचयत्यधर्मबुद्धिः ॥ २४२ ॥

धर्मने ही लोकको धारण कियाहुआ है ॥ २३४ ॥ धर्म और अधर्म, मृत पुरुषके साथ २ जाते हैं ॥ २३५ ॥ दया ही धर्मकी जन्मभूमि है ॥ २३६ ॥ सत्य और दान, धर्ममूलक ही होते हैं ॥ २३७ ॥ धर्मके द्वारा लोकोंको जीतलेता है ॥ २३८ ॥ मृत्यु भी धर्मात्मा पुरुषकी रक्षा करती है ॥ २३९ ॥ धर्मके विरुद्ध पापका जहां २ प्रसार होता है, वहां धर्मका महान तिरस्कार होता है ॥ २४० ॥ उपस्थित विनाशोंकी परिस्थिति, स्वभावसे या कार्यसे पहिचानी जाती है। ('प्रकृत्या कार्येण' के स्थानपर 'प्रकृतिराकारेण' ऐसा पाठ शामशास्त्रीने ठीक माना है। 'होनेवाले विनाशोंकी प्रकृति, आकारसे पहिचानी जाती है' यही उसका अर्थ करना चाहिये) ॥ २४१ ॥ अधर्मबुद्धि अपने (अधर्मात्माके) विनाशकी सूचना देदेती है ॥ २४२ ॥

पिशुनवादिनो न रहस्यम् ॥ २४३ ॥ पररहस्यं नैव श्रोतव्यम् ॥ २४४ ॥ वल्लभस्य कारकत्वमधर्मयुक्तम् ॥ २४५ ॥ स्वजनेष्वतिक्रमो न कर्तव्यः ॥ २४६ ॥ माताऽपि दुष्टा त्याज्या ॥ २४७ ॥ स्वहस्तोपि विषदिग्धश्छेद्यः ॥ २४८ ॥ परोपि च हितो बन्धुः ॥ २४९ ॥ कक्षादप्यौषधं गृह्यते ॥ २५० ॥ नास्ति चोरेषु विश्वासः ॥ २५१ ॥ अप्रतीकारेष्वनादरो न कर्तव्यः ॥ २५२ ॥ व्यसनं मनागपि बाधते ॥ २५३ ॥

चुगलखोर आदमीकी बात कभी छिपी नहीं रहती ॥ २४३ ॥ दूसरे की छिपीहुई बातको कभी न सुनना चाहिये ॥ २४४ ॥ मालिकका कठोर होना, अधर्मयुक्त होता है (?) ॥ २४५ ॥ अपने आदमियोंमें व्यवहारका उल्लंघन नहीं करना चाहिये ॥ २४६ ॥ दुष्ट माताको भी छोड़देना चाहिये ॥ २४७ ॥ विषसे भरेहुए अपने हाथको भी काटदेना चाहिये ॥ २४८ ॥ दूसरा आदमी भी हित करनेवाला अपना बन्धु ही होता है ॥ २४९ ॥ सूखे जंगलसे भी औषधका ग्रहण कियाजाता है ॥ २५० ॥ चोरोंमें कभी विश्वास नहीं होता ॥ २५१ ॥ विघ्नरहित कार्योंके करनेमें कभी उपेक्षा न करनी चाहिये ॥ २५२ ॥ थोड़ा भी व्यसन अवश्य पीड़ा पहुंचाता ही है ॥ २५३ ॥

अमरवदर्थजातमार्जयेत् ॥ २५४ ॥ अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः ॥ २५५ ॥ महेन्द्रमप्यर्थहीनं न बहुमन्यते लोकः ॥ २५६ ॥ दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ॥ २५७ ॥ विरूपोऽर्थवान् सुरूपः ॥ २५८ ॥ अदातारमप्यर्थवन्तमर्थिनो न त्यजन्ति ॥ २५९ ॥ अकुलीनोपि कुलीनाद्विशिष्टः ॥२६०॥ नास्त्यमानभयमनार्यस्य ॥ २६१ ॥ न चेतनवतां वृत्तिभयम् ॥ २६२ ॥ न जितेन्द्रियाणां विषयभयम् ॥ २६३ ॥ न कृतार्थानां मरणभयम् ॥ २६४ ॥

अपने आपको अमर समझकर अर्थोंका संग्रह करे ॥ २५४ ॥ धनवान् पुरुष, सब ही लोगोंका बहुत मान्य होता है ॥ २५५ ॥ अर्थहीन इन्द्रको भी, संसार बड़ा नहीं मानता ॥ २५६ ॥ पुरुषकी दरिद्रता, निश्चित ही, जीते हुए ही मरना है ॥ २५७ ॥ रूपहीन भी धनी पुरुष, सुन्दर रूपवाला समझा जाता है ॥ २५८ ॥ न देनेवाले भी धनी पुरुषको, याचक नहीं छोड़ते ॥२५९॥

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ २ भी धनी पुरुष, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषसे बड़ा समझा जाता है ॥ २६० ॥ नीच पुरुषको अपने तिरस्कारका डर नहीं होता ॥ २६१ ॥ ज्ञानवान् चतुर पुरुषको, अपनी जीविकाका भय नहीं होता ॥ २६२ ॥ जितेन्द्रिय पुरुषको, विषयोंसे भय नहीं होता ॥ २६३ ॥ कृतकृत्य अर्थात् आत्मज्ञानी पुरुषको मृत्युका भय नहीं होता ॥ २६४ ॥

कस्यचिदर्थं स्वमिव मन्यते साधुः ॥ २६५ ॥ परविभवेष्वादरो न कर्तव्यः ॥ २६६ ॥ परविभवेष्वादरोपि नाशमूलम् ॥ २६७ ॥ पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम् ॥ २६८ ॥ परद्रव्यापहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः ॥ २६९ ॥ न चौर्यात्परं मृत्युपाशः ॥ २७० ॥ यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले ॥ २७१ ॥ न मृतस्यौषधं प्रयोजनम् ॥ २७२ ॥ समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजनं भवति ॥ २७३ ॥

सज्जन पुरुष, किसी भी दूसरेके अर्थको, अपने ही अर्थके समान समझता है ॥ २६५ ॥ दूसरेकी संपत्तियोंपर कभी दांत न लगाना चाहिये ॥ २६६ ॥ दूसरेकी संपत्तियोंको अपनानेका विचार भी नाशका कारण होता है ॥ २६७ ॥ पुरालके समान भी दूसरेका द्रव्य, हड़प नहीं करना चाहिये ॥ २६८ ॥ दूसरेके द्रव्योंका अपहरण करना, अपने द्रव्योंके नाशका हेतु होता है ॥ २६९ ॥ चोरीसे अधिक और कोई भी, दुःखमें डालनेवाला बन्धन नहीं होता ॥ २७० ॥ समयपर लपसी भी प्राणोंको धारण करनेमें सहारा होतीहै ॥ १७१ ॥ मरेहुए आदमीका दवाईसे कुछ मतलब नहीं रहता ॥२७२॥ किसी २ समयमें अपने आप भी, प्रभुताका प्रयोजन होता है ? ॥ २७३ ॥

नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति ॥ २७४ ॥ पयःपानमपि विषवर्धनं भुजङ्गस्य नामृतं स्यात् ॥ २७५ ॥ न हि धान्यसमो ह्यर्थः ॥ २७६ ॥ न क्षुधासमश्शत्रुः ॥ २७७ ॥ अकृतेर्नियता क्षुत् ॥ २७८ ॥ नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य ॥ २७९ ॥ इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति ॥ २८० ॥ सानुक्रोशं भर्तारमाजीवेत् ॥२८१॥ लुब्धसेवी पावकेच्छया खद्योतं धमति ॥२८२॥ विशेषज्ञं स्वामिनमाश्रयेत् ॥ २८३ ॥

नीच पुरुषकी विद्याएँ, उसको पापकर्ममें लगा देती है ॥ २७४ ॥ सांपको दूध पिलाना भी विष बढ़ानेवाला ही होता है, वह अमृत कभी नहीं बनसकता ॥ २७५ ॥ धान्य (अन्न) के समान कोई अर्थ (धन) नहीं है ॥ २७६ ॥ भूखके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ २७७ ॥ धनहीन पुरुषको निश्चित ही भूख बहुत सताती है ॥ २७८ ॥ भूखे आदमीके लिये कोई वस्तु अभक्ष्य नहीं होती ॥ २७९ ॥ इन्द्रियां पुरुषको बुढ़ापेके अधीन करदेती हैं ॥ २८० ॥ दयालु मालिकके पास अपनी जीविका करे ॥ २८१ ॥ लोभी मालिककी सेवा करनेवाले पुरुषकी, वही हालत होती है, जो आगके लिये, जुगनूको लेकर उसमें फूंक मारनेवालेकी होती है ॥ २८२ ॥ खूब समझदार मालिकका आश्रय लेवे ॥ २८३ ॥

पुरुषस्य मैथुनं जरा ॥२८४॥ स्त्रीणाममैथुनं जरा ॥२८५॥ न नीचोत्तमयोर्वैवाहः ॥२८६॥ अगम्यागनादायुर्यशःपुण्यानि क्षीयन्ते ॥ २८७ ॥ नास्त्यहङ्कारसमश्शत्रुः ॥ २८८ ॥ संसदि शत्रुं न परिक्रोशेत् ॥ २८९ ॥ शत्रुव्यसनं श्रवणसुखम् ॥२९०॥ अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते ॥ २९१ ॥ हितमप्यधनस्य वाक्यं न गृह्यते ॥ २९२ ॥ अधनस्स्वभार्ययाऽप्यवमन्यते ॥ २९३ ॥ पुष्पहीनं सहकारमपि नोपासते भ्रमराः ॥ २९४ ॥ विद्या धनमधनानाम् ॥ २९५ ॥ विद्या चौरैरपि न ग्राह्या ॥ ॥२९६॥ विद्यया ख्यापिता ख्यातिः ॥ २९७ ॥ यशश्शरीरं न विनश्यति ॥ २९८ ॥

मैथुन, पुरुषका बुढ़ापा है ॥ २८४ ॥ अमैथुन स्त्रियोंका बुढ़ापा है ॥ २८५ ॥ नीच और उत्तमका आपसमें विवाह नहीं होना चाहिये ॥२८६॥ अगम्य स्त्रीके साथ गमन करनेसे आयु, यश और पुण्य, क्षीण होजाते हैं ॥ २८७ ॥ अहङ्कारके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ २८८ ॥ सभामें शत्रुकी निन्दा न करे ॥ २८९ ॥ शत्रुकी विपत्ति, कानोंके लिये बड़ी सुखदाई होती है ॥ २९० ॥ धनहीन पुरुषके बुद्धि नहीं होती ॥ २९१ ॥ धनहीन पुरुषका हितकारक वाक्य भी ग्रहण नहीं कियाजाता ॥ २९२ ॥ धनहीन पुरुष अपनी भार्यासे भी तिरस्कृत होता है ॥ २९३ ॥ भौंरे, पुष्पहीन आम्रवृक्षके पास भी, नहीं फटकते ॥ २९४ ॥ धनहीन पुरुषोंका विद्या ही धन है ॥ २९५ ॥ विद्याको, चोर भी नहीं लेसकते ॥ २९६ ॥ विद्यासे सर्वत्र यश फैलजाता है ॥ २९७ ॥ यश रूपी शरीरका कभी नाश नहीं होता ॥ २९८ ॥

यः परार्थमुपसर्पति न सत्पुरुषः ॥ २९९ ॥ इन्द्रियाणां प्रशमं शास्त्रम् ॥ ३०० ॥ अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्रांकुशं निवारयति ॥ ३०१ ॥ नीचस्य विद्या नोपेतव्या ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छभाषणं न शिक्षेत ॥ ३०३ ॥ म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम् ॥ ३०४ गुणे न मत्सरः कर्तव्यः॥३०५॥शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः ॥ ३०६ ॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यम् ॥ ३०७ ॥ अवस्थया पुरुषस्संमान्यते ॥ ३०८ ॥ स्थान एव नराः पूज्यन्ते ॥ ३०९ ॥ आर्यवृत्तमनुतिष्ठेत् ॥ ३१० ॥ कदाऽपि मर्यादां नातिक्रमेत् ॥ ३११ ॥

जो दूसरोंके लिये कार्य करता है, वही सत्पुरुष कहाता है ॥ २९९ ॥ इन्द्रियोंको शान्त करनेवाला शास्त्र होता है ॥ ३०० ॥ अशास्त्रीय कार्य करनेमें लगजानेपर, शास्त्ररूपी अंकुश ही उसको रोकता है ॥ ३०१ ॥ नीच पुरुषको विद्या ग्रहण नहीं करनी चाहिये ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छोंके समान बोलचाल की शिक्षा, न लेनी चाहिये ॥ ३०३ ॥ म्लेच्छोंका भी अच्छा व्यवहार ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ३०४ ॥ गुणमें कभी मात्सर्य न करना चाहिये ॥ ३०५ ॥ शत्रुका भी अच्छा गुण ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ३०६ ॥ विषसे भी अमृतका ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ३०७ ॥ अवस्था से ही पुरुषका संमान होता है ॥ ३०८ ॥ अपने स्थानपर ही पुरुषोंकी पूजा होती है ॥ ३०९ ॥ सदा श्रेष्ठ पुरुषोंके आचारका ही अनुष्ठान करे ॥ ३१० ॥ मर्यादाका उल्लंघन कभी न करे ॥ ३११ ॥

नास्त्यर्घः पुरुषरत्नस्य ॥ ३१२ ॥ न स्त्रीरत्नसमं रत्नम् ॥ ३१३ ॥ सुदुर्लभं रत्नम् ॥ ३१४ ॥ अयशो भयं भयेषु ॥ ३१५ ॥ नास्त्यलसस्य शास्त्राधिगमः ॥ ४१६ ॥ न स्त्रैणस्य स्वर्गाप्तिर्धर्मकृत्यं च ॥३१७॥ स्त्रियोपि स्त्रैणमवमन्यन्ते ॥३१८॥ न पुष्पार्थी सिञ्चति शुष्कतरुम् ॥ ३१९ ॥ अद्रव्यप्रयत्नो वालुकाक्कथनादनन्यः ॥३२०॥ न महाजनहासः कर्तव्यः ॥३२१॥ कार्यसंपदं निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२२ ॥ नक्षत्रादपि निमित्तानि विशेषयन्ति ॥३२३॥ न त्वरितस्य नक्षत्रपरीक्षा ॥३२४॥

पुरुष रत्नका (पुरुषरूपी रत्नका, अर्थात् पुरुषोंमें जो रत्नके समान श्रेष्ठ हों) कोई मूल्य नहीं होता ॥ ३१२ ॥ स्त्री रत्नके समान कोई रत्न नहीं

॥ ३१३ ॥ रत्नका मिलना अत्यन्त कठिन होता है ॥ ३१४ ॥ सब भयोंमें अपकीर्ति ही बड़ा भय है ॥ ३१५ ॥ आलसी पुरुषको कभी शास्त्रकी प्राप्ति (ज्ञान) नहीं होसकती ॥ ३१६ ॥ स्त्रियोंमें आसक्त रहनेवाले पुरुषको, न स्वर्गकी प्राप्ति होती है, और न वह धर्मकार्योंको ही करसकता है ॥ ३१७ ॥ ऐसे पुरुषका स्त्रियां भी तिरस्कार करती हैं ॥ ३१८ ॥ फूलोंको चाहनेवाला आदमी, सूखे पेड़को नहीं सींचता ॥ ३१९ ॥ बिना ही द्रव्यके प्रयत्न करना, रेतेको पकानेसे भिन्न नहीं होसकता ॥ ३२० ॥ बड़े आदमियोंकी हंसी नहीं उड़ानी चाहिये ३२१ ॥ निमित्त, कार्यसिद्धिको बतादेते हैं ॥ ३२२ ॥ निमित्त, नक्षत्रसे भी अधिक विशेषता रखते हैं ॥ ३२३ ॥ जल्दीके काममें लगेहुए आदमीको, नक्षत्रकी देखभाल करनेकी आवश्यकता नहीं होती ॥ ३२४ ॥

परिचये दोषा न छाद्यन्ते ॥ ३२५ ॥ स्वयमशुद्धः परानाशङ्कते ॥ ३२६ ॥ स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ३२७ ॥ अपराधानुरूपो दण्डः ॥ ३२८ ॥ कथानुरूपं प्रतिवचनम् ॥ ३२९ ॥ विभवानुरूपमाभरणम् ॥ ३३० ॥ कुलानुरूपं वृत्तम् ॥ ३३१ ॥ कार्यानुरूपः प्रयत्नः ॥ ३३२ ॥ पात्रानुरूपं दानम् ॥ ३३३ ॥ वयोऽनुरूपो वेषः ॥ ३३४ ॥ स्वाम्यनुकूलो भृत्यः ॥ ३३५ ॥ भर्तृवशवर्तिनी भार्या ॥३३६॥ गुरुवशानुवर्ती शिष्यः ॥३३७॥ पितृवशानुवर्ती पुत्रः ॥ ३३८ ॥

परिचय होनेपर दोष नहीं ढकेजाते ॥ ३२५ ॥ जो पुरुष, स्वयं अपवित्रहृदय होता है, वह दूसरोंपर आशंका करता है ॥ ३२६ ॥ स्वभावका अतिक्रमण करना बहुत कठिन है ॥ ३२७ ॥ अपराधके अनुसार ही दण्ड होना चाहिये ॥ ३२८ ॥ कथाके अनुकूल ही उत्तर होना चाहिये ॥ ३२९ ॥ सम्पत्तिके अनुसार ही आभरण (आभूषण) होना चाहिये ॥ ३३० ॥ कुलके अनुरूप आचरण होना चाहिये ॥३३१॥ कार्यके अनुकूल ही प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३३२ ॥ पात्रके अनुसार ही दान दियाजाता है ॥ ३३३ ॥ आयुके अनुसार ही वेष होना चाहिये ॥ ३३४ ॥ स्वामीके अनुकूल ही भृत्य होना चाहिये ॥ ३३५ ॥ भार्याको, भर्त्ताके वशवर्ती रहना चाहिये ॥ ३३६ ॥ शिष्यको गुरुके अधीन रहना चाहिये ॥ ३३७ ॥ पुत्रको, पिताके अधीन रहना चाहिये ॥ ३३८ ॥

अत्युपचारश्शङ्कितव्यः ॥ ३३९ ॥ स्वामिनमेवानुवर्तेत ॥ ३४० ॥ मातृताडितो वत्सो मातरमेवानुरोदिति ॥ ३४१ ॥

स्नेहवतस्स्वल्पो हि रोषः ॥ ३४२ ॥ आत्मच्छिद्रं न पश्यति परच्छिद्रमेव पश्यति बालिशः ॥ ३४३ ॥ सोपचारः कैतवः ॥ ३४४ ॥ काम्यैर्विशेषैरुपचरणमुपचारः ॥ ३४५ ॥ चिरपरिचितानामत्युपचारश्शङ्कितव्यः ॥ ३४६ ॥ गौर्दुष्करा श्वसहस्रादेकाकिनी श्रेयसी ॥३४७॥ श्वोमयूरादद्यकपोतो वरः ॥ ३४८ ॥

अत्यधिक उपचार (सेवा) शङ्काका स्थान होता है ॥३३९॥ मालिकके कुपित होजानेपर, मालिकके अनुसार ही कार्य करे ॥ ३४० ॥ मातासे पीटाहुआ बालक, माताके ही पास जाकर रोता है ॥ ३४१ ॥ स्नेह करनेवाले व्यक्तिका क्रोध बहुत थोड़ा होता है ॥ ३४२ ॥ मूर्ख पुरुष, अपने दोषोंको नहीं देखता, दूसरोंके दोषोंको ही देखता है ॥ ३४३ ॥ छल, सदा सेवाके साथ ही होता है ॥ ३४४ ॥ विशेष कामनाओंके साथ किसीकी परिचर्या करनेको ही 'उपचार' कहते हैं ॥ ३४५ ॥ अपने चिरपरिचित पुरुषोंका अत्यन्त उपचार, शङ्काका स्थान होता है ॥ ३४६ ॥ दुष्कर अकेली गाय भी, हजार कुत्तोंसे अच्छी होती है ॥ २४७ ॥ कल मिलेहुए मोरसे, आज मिलाहुआ कबूतर अच्छा होता है ॥ ३४८ ॥

अतिसंगो दोषमुत्पादयति ॥ ३४९ ॥ सर्वं जयत्यक्रोधः ॥३५०॥ यद्यपकारिणि कोपः कोपे कोप एव कर्तव्यः ॥३५१॥ मतिमत्सु मूर्खमित्रगुरुवल्लभेषु विवादो न कर्तव्यः ॥ ३५२ ॥ नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम् ॥३५३॥ नास्ति धनवतां शुभकर्मसु श्रमः ॥ ३५४ ॥ नास्ति गतिश्रमो यानवताम् ॥ ३५५ ॥ अलोहमयं निगळं कलत्रम् ॥ ३५६ ॥ यो यस्मिन् कुशलस्स तस्मिन् योक्तव्यः ॥ ३५७ ॥ दुष्कलत्रं मनस्विनां शरीरकर्शनम् ॥३५८॥

अत्यन्त संग करना दोषको उत्पन्न करदेता है ॥ ३४९ ॥ क्रोध न करना, सबको जीतलेता है ॥ ३५० ॥ यदि बुराई करनेवालेपर क्रोध करते हो, तो पहिले क्रोधपर ही क्रोध करना चाहिये ॥ ३५१ ॥ बुद्धिमानोंमें और मूर्ख, मित्र, गुरु तथा अपने प्रिय पुरुषोंमें विवाद नहीं करना चाहिये ॥३५२॥ ऐश्वर्य, पिशाचतासे रहित नहीं होसकता ॥ ३५३ ॥ अच्छे कार्योंके करनेमें धनी पुरुषोंका श्रम नहीं होता ॥ ३५४ ॥ सवारी रखनेवाले आदमियोंको, चलनेका श्रम नहीं उठाना पड़ता ॥ ३५५ ॥ स्त्री, लोहेकी न बनीहुई बेड़

मज़बूत जंजीर है ॥ ३५६ ॥ जो जिस कार्यमें चतुर हो, उसको उसी कार्यपर लगाना चाहिये ॥ ३५७ ॥ दुष्ट स्त्री, मनस्वी पुरुषोंके शरीरको चूसनेवाली होती है ॥ ३५८ ॥

अप्रमत्तो दारान् निरीक्षेत ॥ ३५९ ॥ स्त्रीषु किंचिदपि न विश्वसेत् ॥ ३६० ॥ न समाधिः स्त्रीषु लोकज्ञता च ॥ ३६१ ॥ गुरूणां माता गरीयसी ॥ ३६२ ॥ सर्वावस्थासु माता भर्तव्या ॥ ३६३ ॥ वैदुष्यमलङ्कारेणाच्छाद्यते ॥ ३६४ ॥ स्त्रीणां भूषणं लज्जा ॥ ३६५ ॥ विप्राणां भूषणं वेदः ॥ ३६६ ॥ सर्वेषां भूषणं धर्मः ॥ ३६७ ॥ भूषणानां भूषणं सविनया विद्यते ॥ ३६८ ॥ अनुपद्रवं देशमावसेत् ॥ ३६९ ॥ साधुजनबहुलो देशः ॥३७०॥

प्रमादरहित होकर स्त्रीका निरीक्षण करे ॥ ३५९ ॥ स्त्रियोंपर कुछ भी विश्वास न करे ॥ ३६० ॥ स्त्रियोंमें निश्चलता तथा व्यवहारपटुता नहीं होती ॥ ७६१ ॥ सब बड़ी चीज़ोंमें माता ही सबसे बड़ी होती है ॥ ३६२ ॥ सब अवस्थाओंमें माताका भरण पोषण करना चाहिये ॥ ३६३ ॥ विद्वत्ता, अलङ्कार (आभूषण आदि) से ढकदी जाती है ॥ ३६४ ॥ स्त्रियोंका भूषण लज्जा है ॥ ३६५ ॥ ब्राह्मणोंका भूषण वेद है ॥ ३६६ ॥ सबका भूषण धर्म है ॥ ३६७ ॥ लज्जा आदिका, विनयसे सहित होना, भूषणोंका भी भूषण होता है ॥ ३६८ ॥ उपद्रवरहित देशमें निवास करे ॥ ३६९ ॥ जहां साधुजन बहुत रहते हों, वही देश होता है ॥ ३७० ॥

राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम् ॥ ३७१ ॥ न राज्ञः परं दैवतम् ॥ ३७२ ॥ सुदूरमपि दहति राजवह्निः ॥ ३७३ ॥ रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत् ॥ ३७४ ॥ गुरुं च दैवं च ॥ ३७५ ॥ कुटुम्बिनो भेतव्यम् ॥ ३७६ ॥ गन्तव्यं च सदा राजकुलम् ॥ ३७७ ॥ राजपुरुषैस्संबन्धं कुर्यात् ॥ ३७८ ॥ राजदासी न सेवितव्या ॥ ३७९ ॥ न चक्षुषाऽपि राजानं निरीक्षेत ॥३८०॥ पुत्रे गुणवति कुटुम्बिनः स्वर्गः ॥ ३८१ ॥ पुत्रा विद्यानां पारं गमयितव्याः ॥ ३८२ ॥

राजासे सदा डरना चाहिये ॥ ३७१ ॥ राजासे बढ़कर कोई दैवत नहीं होता ॥ ३७२ ॥ राजारूपी आग, बहुत दूर रहतेहुए भी जलादेती है

॥ ३७३ ॥ खाली हाथ राजाके पास न जावे ॥ ३७४ ॥ गुरु और देवताके पास भी रीते हाथ न जावे ॥ ३७५ ॥ कुटुम्बीसे डरना चाहिये ॥ ३७६ ॥ और राजकुलमें सदा जाना चाहिये ॥ ३७७ ॥ यथाशक्ति राजपुरुषोंके साथ सम्बन्ध करे ॥ ३७८ ॥ राजाकी दासीके साथ संग न करे ॥ ३७९ ॥ राजा को भी आंखसे (अर्थात् उसकी ओर आंख उठाकर) न देखे ॥ ३८० ॥ पुत्रके गुणवान् होनेपर कुटुम्बी पुरुषका यहीं स्वर्ग होजाता है ॥ ३८१ ॥ पुत्रोंको विद्याओंके पार पहुंचादेना चाहिये अर्थात् उसको पूरा विद्वान् बना देना चाहिये ॥ ३८२ ॥

जनपदार्थं ग्रामं त्यजेत् ॥ ३८३ ॥ ग्रामार्थं कुटुम्बस्त्यज्यते ॥३८४॥ अतिलाभः पुत्रलाभः ॥ ३८५ ॥ दुर्गतेः पितरौ रक्षति स पुत्रः ॥ ३८६ ॥ कुलं प्रख्यापयति पुत्रः ॥ ३८७ ॥ नानपत्यस्य स्वर्गः ॥ ३८८ । या प्रसूते भार्या ॥ ३८९॥ तीर्थसमवाये पुत्रवतीमनुगच्छेत् ॥ ३९० ॥ सतीर्थाभिगमनाद्ब्रह्मचर्यं नश्यति ॥ ३९१ ॥ न परक्षेत्रे बीजं विनिक्षिपेत् ॥ ३९२ ॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥ ३९३ ॥

जनपदके हितके लिये गांवको छोड़देवे ॥ ३८३ ॥ गांवके लिये कुटुम्ब छोड़ दिया जाता है ॥ ३८४ ॥ पुत्रका लाभ, बहुत बड़ा लाभ है ॥ ३८५ ॥ दुर्गतिसे जो अपने माता पिताकी रक्षा करता है, वही पुत्र है ॥ ३८६ ॥ पुत्र, अपने कुलको प्रसिद्ध करदेता है ॥ ३८७ ॥ पुत्रहीन पुरुषको स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३८८ ॥ जो स्त्री ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है, वही भार्या समझनी चाहिये ॥ ४८१ ॥ अनेक स्त्रियोंके एक साथही ऋतुमती होनेपर, उसी स्त्रीके पास जावे, जो पहिलेसे पुत्रवती हो ॥ ३९० ॥ रजस्वला स्त्रीके गमन करनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट होजाता है ॥ ३९१ ॥ दूसरेके खेतमें बीज न डाले। अर्थात् परस्त्रीके साथ कदापि संग न करे ॥ ३९२ ॥ पुत्रोंके लियेही स्त्रियां होती है ॥ ३९३ ॥

स्वदासीपरिग्रहो हि स्वदासभावः ॥ ३९४ ॥ उपस्थितविनाशः पथ्यवाक्यं न शृणोति ॥ ३९५ ॥ नास्ति देहिनां सुखदुःखाभावः ॥ ३९६ ॥ मातरमिव वत्साः सुखदुःखानि कर्तारमेवानुगच्छन्ति ॥ ३९७ ॥ तिलमात्रमप्युपकारं शैलमात्रं मन्यते साधुः ॥ ३९८ ॥ उपकारोऽनार्येष्वकर्तव्यः ॥ ३९९ ॥ प्रत्युप-

कारभयादनार्यश्शत्रुर्भवति ॥ ४०० ॥ स्वल्पमप्युपकारकृते प्रत्यु-
पकारं कर्तुमार्यो न स्वपिति ॥ ४०१ ॥

अपनी दासीको स्वीकार करलेनाही, अपने आपको दास बना लेना है ॥ ३९४ ॥ जिसका विनाश उपस्थित होता है, वह हितकर वाक्यको नहीं सुनता ॥ ३९५ ॥ प्राणियोंके सुख और दुःखका अभाव नहीं होता । अर्थात् प्राणियोंके सुख और दुःख बनेही रहते हैं ॥ ३९६ ॥ जैसे बच्चे माताके साथही जाते हैं, इसी तरह सुख और दुःख, कर्त्ताके साथही लगे रहते हैं ॥ ३९७ ॥ तिलमात्र उपकारको भी साधु पुरुष पर्वतके समान मानता है ॥ ३९८ ॥ नीच पुरुषोंपर उपकार न करना चाहिये ॥ ३९९ ॥ उपकारका बदला देनेके डरसे, नीच पुरुष शत्रु होजाता है ॥ ४०० ॥ श्रेष्ठपुरुष, थोड़ेसे उपकारके बदलेमें भी प्रत्युपकार करनेके लिये कभी चुप नहीं रहता ॥ ४०१ ॥

न कदाऽपि देवताऽवमन्तव्या ॥ ४०२ ॥ न चक्षुषः समं ज्योतिरस्ति ॥ ४०३ ॥ चक्षुर्हि शरीरिणां नेता ॥ ४०४ ॥ अप-चक्षुषः किं शरीरेण ॥ ४०५ ॥ नाप्सु मूत्रं कुर्यात् ॥ ४०६ ॥ न नग्नो जलं प्रविशेत् ॥ ४०७ ॥ यथा शरीरं तथा ज्ञानम् ॥ ४०८ ॥ यथा बुद्धिस्तथा विभवः ॥ ४०९ ॥ अग्नावग्निं न निक्षिपेत् ॥ ४१० ॥ तपस्विनः पूजनीयाः ॥ ४११ ॥ परदारान् न गच्छेत् ॥ ४१२ अन्नदानं भ्रूणहत्यामपि मार्ष्टि ॥ ४१३ ॥ न वेदबाह्यो धर्मः ॥ ४१४ ॥ कदाचिदपि धर्मं निषेवेत ॥४१५॥

देवताका कभी तिरस्कार न करना चाहिये ॥ ४०२ ॥ चक्षुके समान, कोई ज्योति नहीं है ॥ ४०३ ॥ चक्षुही प्राणियोंका नेता है ॥ ४०४ ॥ चक्षु रहित प्राणीको शरीरसे क्या ॥ ४०५ ॥ जलमें मूत्र न करे, ॥ ४०६ ॥ नंगा होकर जलमें प्रवेश न करे ॥ ४०७ ॥ जैसा शरीर होता है, वैसाही ज्ञान होता है ॥ ४०८ ॥ जैसी बुद्धि होती है, उसीके अनुसार विभव अर्थात् ऐश्वर्य होता है ॥ ४०९ ॥ आगमें आगको न फेंके ॥ ४१० ॥ तपस्वियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये ॥ ४११ ॥ परस्त्रियोंके साथ गमन न करे ॥ ४१२ ॥ अन्नका दान करना, भ्रूणहत्याको भी साफ करदेता है ॥ ४१३ ॥ वेदबाह्य, धर्म नहीं होता ॥ ४१४ ॥ सदाही धर्मकी सेवन करता रहे ॥ ४१५ ॥

स्वर्गं नयति सुनृतम् ॥ ४१६ ॥ नास्ति सत्यात्परं तपः ॥ ४१७ ॥ सत्यं स्वर्गस्य साधनम् ॥ ४१८ ॥ सत्येन धार्यते

लोकः ॥४१९॥ सत्याद्देवो वर्षति ॥४२०॥ नानृतात्पातकं परम् ॥ ४२१ ॥ न मीमांस्या गुरवः ॥ ४२२ ॥ खलत्वं नोपेयात् ॥ ४२३ ॥ नास्ति खलस्य मित्रं ॥ ४२४ ॥ लोकयात्रा दरिद्रं बाधते ॥ ४२५ ॥ अतिशूरो दानशूरः ॥ ४२६ ॥

सत्याचरण, स्वर्गको लेजाता है । अर्थात् सत्याचरणसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ४१६ ॥ सत्यसे बढ़कर कोई तप नहीं है ॥ ४१७ । सत्य, स्वर्गका साधन होता है । ४१८ ।' सत्यनेही लोकको धारण किया हुआ है ॥ ४१९ ॥ सत्यसेही देव (मेघ) बरसता है ॥ ४२० । झूंठसे बढ़कर कोई पाप नहीं ॥ ४२१ ॥ गुरुओंकी आलोचना नहीं करनी चाहिये ॥ ४२२ ॥ धूर्त्तताको कभी अंगीकार न करे ॥ ४२३ ॥ धूर्त्तपुरुषका कोई मित्र नहीं होता । ४२४॥ दरिद्र मनुष्यको, जीवननिर्वाह (लोकयात्रा) बहुत पीड़ा पहुंचाता है ॥४२५॥ दानशूर पुरुषही, बड़ा शूर कहा जाता है ॥ ४२६ ॥

गुरुदेवब्राह्मणेषु भक्तिर्भूषणम् ॥ ४२७ ॥ सर्वस्य भूषणं विनयः ॥४२८॥ अकुलीनोपि विनीतः कुलीनाद्विशिष्टः ॥४२९॥ आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च ॥ ४३० ॥ प्रियमप्यहितं न वक्तव्यम् ॥ ४३१ ॥ बहुजनविरुद्धमेकं नानुवर्तेत ॥ ४३२ ॥ न दुर्जनेषु भागधेयः कर्तव्यः ॥ ४३३ ॥ न कृतार्थेषु नीचेषु सम्बन्धः ॥ ४३४ ॥ ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः ॥ ४३५ ॥ भूत्याऽनुवर्तनं पुरुषस्य रसायनम् ॥ ४३६ ॥ नार्थिष्ववज्ञा कार्या ॥४३७॥

गुरु, देवता और ब्राह्मणमें भक्ति रखना, मनुष्यका एक भूषण होता है ॥ ४२७ ॥ सबका भूषण विनय है ॥ ४२८ । नीचकुलमें उत्पन्न हुआ २ भी विनीत पुरुष, उच्चकुलमें उत्पन्न हुए पुरुषसे बड़ा होता है ॥ ४२९ ॥ सदाचारसे आयु और यश दोनों बढ़ते हैं ॥ ४३० । कल्याण न करनेवाला प्रिय, कभी न कहना चाहिये ॥ ४३१ ॥ बहुत पुरुषोंसे विरुद्ध रहनेवाले एक पुरुषका अनुगामी न बने ॥ ४३२ ॥ दुर्जन पुरुषोंमें कभी हिस्सा नहीं करना चाहिये ॥ ४३३ ॥ सफल हुए २ भी नीच पुरुषोंमें कभी सम्बन्ध न करना चाहिये ॥ ४३४ ॥ ऋण, शत्रु और व्याधि इनको कभी बाकी नहीं रखना चाहिये ॥ ४३५ ॥ कल्याण पूर्वक व्यवहार करना, पुरुषके लिये रसायन होता है ॥ ४३६ ॥ याचकोंका कभी तिरस्कार-न करना चाहिये ॥ ४३७ ॥

दुष्करं कर्म कारयित्वा कर्तारमवमन्यते नीचः ॥ ४३८ ॥ नाकृतज्ञस्य नरकान्निवर्तनम् ॥ ४३९ ॥ जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ४४० ॥ विषामृतयोराकरी जिह्वा ॥ ४४१ ॥ प्रियवादिनो न शत्रुः ॥ ४४२ ॥ स्तुता अपि देवतास्तुष्यन्ति ॥ ४४३ ॥ अनृतमपि दुर्वचनं चिरं तिष्ठति ॥ ४४४ ॥ राजद्विष्टं न च वक्तव्यम् ॥ ४४५ ॥ श्रुतिसुखात् कोकिलालापात्तुष्यन्ति ॥ ४४६ ॥ स्वधर्महेतुस्सत्पुरुषः ॥ ४४७ ॥

नीच पुरुष, पहिले किसीसे कठिन कार्य करवाकर फिर उस कार्यकर्त्ता को तिरस्कृत करदेता है । ४३८ ॥ कृतघ्न पुरुष, कभी नरकसे नहीं लौटता ॥ ४३९ ॥ वृद्धि और विनाश, जिह्वकेही अधीन है ॥ ४४० ॥ जिह्वा, विष और अमृत दोनोंकीही खान है ॥ ४४१ ॥ प्रियवादी पुरुषका कोई शत्रु नहीं होता ॥ ४४२ ॥ स्तुति किये जानेपर देवता भी सन्तुष्ट होजाते हैं ॥ ४४३ ॥ झूंठा भी दुर्वचन चिरकालतक याद रहता है ॥ ४४४ ॥ राजाके विरुद्ध न कहना चाहिये ॥ ४४५ ॥ कानोंको सुख देनेवाले कोयलके समान आलापसे पुरुष सन्तुष्ट होजाते हैं ॥ ४४६ ॥ अपनेही धर्मके कारण पुरुष, सत्पुरुष कहाता है ॥ ४४७ ॥

नास्त्यर्थिनो गौरवम् ॥ ४४८ ॥ स्त्रीणां भूषणं सौभाग्यम् ॥ ४४९ ॥ शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः ॥ ४५० ॥ अप्रयत्नोदकं क्षेत्रम् ॥ ४५१ ॥ एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत् ॥४५२॥ अतिप्रवृद्धा शाल्मली वारणस्तम्भो न भवति ।४५३॥ अतिदीर्घोपि कर्णिकारो न मुसली ॥ ४५४ ॥ अतिदीप्तोपि खद्योतो न पावकः ॥ ४५५ ॥ न प्रवृद्धत्वं गुणहेतुः ॥ ४५६ ॥ सुजीर्णोपि पिचुमन्दो न शङ्कुलायते ॥ ४५७ ॥

याचकका कभी गौरव नहीं होता ॥ ४४८ ॥ सौभाग्यही स्त्रियोंका भूषण है ॥ ४४९ ॥ शत्रुके भी जीवननिर्वाहको, नष्ट न करना चाहिये ॥४५०॥ विशेष प्रयत्नके विनाही जहां जल प्राप्त होसके, वहीं खेत समझना चाहिये ॥ ४५१ ॥ ऐरंडका सहारा लेकर हाथीको कुपित न करे ॥ ४५२ ॥ बहुत लम्बा चौड़ा या बढा हुआ भी सिंभलका वृक्ष, हाथीको रोकनेवाले खम्भेका काम नहीं देता ॥ ४५३ ॥ बहुत बड़ा भी कनेरका वृक्ष, मूसल बनानेके

योग्य नहीं होता ॥ ४५४ ॥ बहुत अधिक चमकता हुआ भी जुगनू, आग नहीं होता ॥ ४५५ ॥ बहुत लम्बा चौड़ा होना, गुणोंका हेतु नहीं होता ॥ ४५६ ॥ बहुत पुराना भी नींम शकुट (सरोता) नहीं होसकता ॥ ४५७ ॥

यथा बीजं तथा निष्पत्तिः ॥४५८॥ यथा श्रुतं तथा बुद्धिः ॥ ४५९ ॥ यथा कुलं तथाऽऽचारः ॥ ४६० ॥ संस्कृतः पिचुमन्दो न सहकारो भवति ॥ ४६१ ॥ न चागतं सुखं त्यजेत् ॥ ४६२ ॥ स्वयमेव दुःखमधिगच्छति ॥ ४६३ ॥ रात्रिचारणं न कुर्यात् ॥ ४६४ ॥ न चार्धरात्रं स्वपेत् ॥ ४६५ ॥ तद्विद्वद्भिः परीक्षेत ॥ ४६६ ॥ परगृहमकारणतो न प्रविशेत् ॥ ४६७ ॥ ज्ञात्वाऽपि दोषमेव करोति लोकः ॥ ४६८ ॥

जैसा बीज होता है, वैसाही फल निकलता है ॥४५८॥ जैसा अध्ययन होता है, वैसीही बुद्धि होती है ॥४५९॥ जैसा कुल होता है वैसाही आचार होताहै ॥४६०॥ संस्कार किया हुआ भी नींम, आम नहीं होसकता ॥४६१॥ प्राप्त हुए सुखको कदापि न छोड़े ॥ ४६२ ॥ स्वयंही पुरुष दुःखको प्राप्त करता है ॥ ४६३ ॥ रातमें इधर उधर न घूमे ॥ ४६४ ॥ आधी रातमें न सोवे ॥ ४६५ ॥ विद्वानोंके द्वाराही इसकी परीक्षा करे ॥ ४६६ ॥ बिना कारणही दूसरेके घरमें प्रवेश न करे ॥ ४६७ ॥ जानकर भी लोग बुरा काम करतेही हैं ॥ ४६८ ॥

शास्त्रप्रधाना लोकवृत्तिः ॥ ४६९ ॥ शास्त्राभावे शिष्टाचारमनुगच्छेत् ॥ ४७० ॥ नाचरिताच्छास्त्रं गरीयः ॥ ४७१ ॥ दूरस्थमपि चारचक्षुः पश्यति राजा ॥ ४७२ ॥ गतानुगतिको लोकः ॥ ४७३ ॥ यमनुजीवेत् तं नापवदेत् ॥ ४७४ ॥ तपस्सार इन्द्रियनिग्रहः ॥ ४७५ ॥ दुर्लभस्त्रीबन्धनान्मोक्षः ॥ ४७६ ॥ स्त्री नाम सर्वाशुभानां क्षेत्रम् ॥४७७॥ न च स्त्रीणां पुरुषपरीक्षा ॥ ४७८ ॥ स्त्रीणां मनः क्षणिकम् ॥४७९॥ अशुभद्वेषिणः स्त्रीषु न प्रसक्ताः ॥ ४८० ॥

लोगोंके व्यवहार, शास्त्रकेही अनुसार होने चाहिये ॥ ४६९॥ शास्त्रके अभावमें, शिष्ट पुरुषोंके आचारकाही अनुगमन करना चाहिये ॥ ४७० ॥ सदाचार या शिष्टाचारसे बढ़कर शास्त्र नहीं होता ॥ ४७१ ॥ चार (गुप्तचर) रूपी चक्षुओंसे युक्त राजा, दूरस्थित वस्तुको भी देख लेता है ॥ ४७२ ॥ लोक

गतानुगतिके अर्थात् बिना विचारे एक दूसरेके पीछे चलनेवाला होता है ॥ ४७३ ॥ जिसके सहारेसे जीवननिर्वाह होता हो, उसकी कभी निन्दा न करे ॥ ४७४ ॥ इन्द्रियोंको वशमें रखनाही, तपका सार है ॥ ४७५ ॥ स्त्रीरूपी बन्धनसे छुटकारा पाना दुर्लभ है ॥ ४७६ ॥ स्त्री, यह, निश्चितही सब अशुभोंका क्षेत्र है ॥ ४७७ ॥ स्त्रियोंकी, पुरुषोंको परीक्षा नहीं होती ॥ ४७८ ॥ स्त्रियोंका मन क्षणिक, अर्थात् चञ्चल होता है ॥ ४७९ ॥ जो पुरुष, अशुभ अर्थात् अमंगलके साथ द्वेष रखते हैं, वे कभी स्त्रियोंमें आसक्त नहीं होते ॥ ४८० ॥

यज्ञफलज्ञास्त्रिवेदविदः ॥ ४८१ ॥ स्वर्गस्थानं न शाश्वतं यावत्पुण्यफलम् ॥४८२॥ न च स्वर्गपतनात्परं दुःखम् ॥४८३॥ देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रपदं न वाञ्छति ॥ ४८४ ॥ दुःखानामौषधं निर्वाणम् । ४८५ ॥ अनार्यसंबन्धाद्वरमार्यशत्रुता ॥४८६॥ निहन्ति दुर्वचनं कुलम् ॥ ४८७ ॥ न पुत्रसंस्पर्शात्परं सुखम् ॥ ४८८ ॥ विवादे धर्ममनुस्मरेत् ॥ ४८९ ॥ निशान्ते कार्यं चिन्तयेत् ॥ ४९० ॥ प्रदोषे न संयोगः कर्तव्यः ॥ ४९१ ॥

तीनों वेदोंको जाननेवाले पुरुषही, यज्ञके फलोंको जान सकते हैं ॥ ४८१ ॥ स्वर्गस्थान नित्य नहीं होता, पुण्यके अनुसारही वह फल मिलता है ॥ ४८२ ॥ स्वर्गसे नीचे गिरनेसे बढ़कर और कोई दुःख नहीं होता ॥४८३॥ प्राणी, अपनी देहको छोड़कर, इन्द्रपदको नहीं चाहता ॥ ४८४ ॥ निर्वाण अर्थात् मोक्षपदही सब दुःखोंकी औषध है ॥ ४८५ ॥ अनार्यके साथ सम्बन्ध होनेकी अपेक्षा, आर्यके साथ शत्रुता होना अच्छा है ॥ ४८६ ॥ दुर्वचन, कुल को नष्ट करदेता है ॥ ४८७ ॥ पुत्रस्पर्शसे बढ़कर कोई सुख नहीं ॥ ४८८ ॥ विवाद होनेपर धर्मका अनुस्मरण करे । अर्थात् जिस विषयमें झगड़ा हो, उसका फैसला धर्मके अनुसार किया जावे ॥ ४८९ ॥ रात्रिके अन्तमें, अर्थात प्रातःकाल शयन अनन्तर उठकर, आगामी कार्योंका चिन्तन करे ॥ ४९० ॥ प्रदोष समयमें, संयोग न करना चाहिये ॥ ४९१ ॥

उपस्थितविनाशः दुर्नयं मन्यते ॥ ४९२ ॥ क्षीरार्थिनः किं करिण्या ॥ ४९३ ॥ न दानसमं वश्यम् ॥ ४९४ ॥ परायत्तेषूत्कण्ठां न कुर्यात् ॥ ४९५ ॥ असत्समृद्धिरसद्भिरेव भुज्यते ॥४९६॥ निम्बफलं काकैर्भुज्यते ॥ ४९७ ॥ नाम्भोधिस्तृष्णामपोहति

॥ ४९८ ॥ वालुका अपि स्वगुणमाश्रयन्ते ॥ ४९९ ॥ सन्तोऽसत्सु न रमन्ते ॥ ५०० ॥ हंसः प्रेतवने न रमते ॥ ५०१ ॥

जिसका विनाश, शीघ्रही उपस्थित होनेवाला होता है, वह अन्याय करने लगता है ॥ ४९२ ॥ जो दूध चाहता है, उसे हथिनीसे क्या? ॥४९३॥ दानसे बढ़कर, दूसरेको वशमें करनेवाली कोई वस्तु नहीं ॥ ४९४ ॥ दूसरोंके अधीन वस्तुओंमें कभी अभिलाषा न करे ॥ ४९५ ॥ पापियोंकी सम्पत्तिको पापीही भोगते हैं ॥ ४९६ ॥ नींमके फल (निबौरी) को कौएही खाते हैं ॥ ४९७ ॥ समुद्र कभी प्यासको नहीं बुझा सकता ॥ ४९८ ॥ वालुका भी अपनेही गुणोंका अवलम्ब करती है ॥ ४९९ ॥ सज्जन पुरुष, कभी दुर्जनोंमें आनन्दित नहीं होसकते ॥ ५०० ॥ हंस कभी, सुनसान श्मशान स्थानमें रमण नहीं करता ॥ ५०१ ॥

अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः ॥ ५०२ ॥ आशया बध्यते लोकः ॥ ५०३ ॥ न चाशापरैश्श्रीस्सह तिष्ठति ॥ ५०४ ॥ आशापरे न धैर्यम् ॥ ५०५ ॥ दैन्यान्मरणमुत्तमम् ॥ ५०६ ॥ आशा लज्जां व्यपोहति ॥५०७॥ न मात्रा सह वासः कर्तव्यः ॥५०८॥ आत्मा न स्तोतव्यः ॥ ५०९ ॥ न दिवा स्वप्नं कुर्यात् ॥५१०॥ न चासन्नमपि पश्यत्यैश्वर्यान्धः न शृणोतीष्टं वाक्यम् ॥ ५११ ॥

अर्थके लियेही संसार प्रवृत्त होता है ॥ ५०२ ॥ आशासेही लोक बंधा हुआ है ॥ ५०३ ॥ आशामेंही तत्पर हुए २, पुरुषोंके, साथ लक्ष्मी नहीं ठहरती ॥ ५०४ ॥ इसी तरह आशामें तत्पर हुए पुरुषमें धैर्य नहीं रहता ॥ ५०५ ॥ दीनतासे मरना अच्छा है ॥ ५०६ ॥ आशा, लज्जाको दूर करदेती है ॥ ५०७ ॥ माताके साथ कभी वास न करना चाहिये ॥ ५०८ ॥ स्वयं अपनीही स्तुति न करनी चाहिये ॥ ५०९ ॥ दिनमें कभी न सोना चाहिये ॥ ५१० ॥ ऐश्वर्यसे अन्धा हुआ २ पुरुष, न अपने समीप स्थित पुरुषको देखता है, और न अपने हितकर वाक्योंको सुनता है ॥ ५११ ॥

स्त्रीणां न भर्तुः परदैवतम् ॥ ५१२ ॥ तदनुवर्तनमुभयसौख्यम् ॥ ५१३ ॥ अतिथिमभ्यागतं पूजयेद्यथाविधि ॥ ५१४ ॥ नास्ति हव्यस्य व्याघातः ॥ ५१५ ॥ शत्रुर्मित्रवत्प्रतिभाति ॥ ५१६ ॥ मृगतृष्णा जलवद्भाति ॥ ५१७ ॥ दुर्मेधसामसच्छास्त्रं मोहयति ॥ ५१८ ॥ सत्संगः स्वर्गवासः ॥ ५१९ ॥ आर्यः

स्वमिव परं मन्यते ॥ ५२० ॥ रूपानुवर्ती गुणः ॥ ५२१ ॥
यत्र सुखेन वर्तते तदेव स्थानम् ॥ ५२२ ॥

स्त्रियोंके लिये अपने भर्त्तासे बढ़कर कोई देवता नहीं है ॥ ५१२ ॥ उसके पीछे चलना, दोनों लोकोंमें सुखदाई होता है ॥ ५१३ ॥ अभ्यागत अतिथिका विधिपूर्वक सत्कार करे ॥ ५१४ ॥ हव्य अर्थात् यज्ञ आदि कर्मोंका कभी व्याघात नहीं होता ॥ ५१५ ॥ शत्रु, कभी मित्रकी तरह प्रतीत होता है ॥ ५१६ ॥ मृगतृष्णा, जलके समान मालूम पड़ती है ॥ ५१७ ॥ दुर्बुद्धि पुरुषोंको असच्छास्त्र, अपने वशमें करलेता है ॥ ५१८ ॥ सज्जनोंका संगही स्वर्गवास है ॥ ५१९ ॥ आर्य, अपने समान दूसरोंको मानता है ॥ ५२० ॥ रूपके अनुसारही गुण होता है ॥ ५२१ ॥ जहां मनुष्य सूखपूर्वक रहे, वही स्थान समझना चाहिये ॥ ५२२ ॥

विश्वासघातिनो न निष्कृतिः ॥ ५२३ ॥ दैवायत्तं न शोचेत् ॥ ५२४ ॥ आश्रितदुःखमात्मन इव मन्यते साधुः ॥५२५॥ हृद्गतमाच्छाद्यान्यद्वदत्यनार्यः ॥५२६॥ बुद्धिहीनः पिशाचतुल्यः ॥ ५२७ ॥ असहायः पथि न गच्छेत् ॥ ५२८ ॥ पुत्रो न स्तोतव्यः ॥ ५२९ ॥ स्वामी स्तोतव्योऽनुजीविभिः ॥ ५३० ॥ धर्मकृत्येष्वपि स्वामिन एव घोषयेत् ॥ ५३१ ॥ राजाज्ञां नातिलङ्घयेत् ॥ ५३२ ॥ यथाऽऽज्ञप्तं तथा कुर्यात् ॥ ५३३ ॥

विश्वासघाती पुरुषका कभी उद्धार नहीं होसकता ॥ ५५३ ॥ दैवके अधीन वस्तुके लिये शोक न करे ॥ ५२४ ॥ आश्रित हुए २ दुःखी पुरुषको साधुजन अपने ही समान मानता है ॥ २२५ ॥ अनार्य पुरुष, अपने हार्दिक भावोंको छिपाकर प्रकटमें और कुछ कहदेता है ॥ ५२६ ॥ बुद्धिहीन पुरुष पिशाचके समान होता है ॥ ५२७ ॥ अकेला मार्गमें न चले ॥ २२८ । अपने पुत्रकी स्तुति न करना चाहिये ॥ २२९ ॥ भृत्योको अपने स्वामीकी स्तुति अवश्य करनी चाहिये ॥ ५३० ॥ धर्मकार्योंमें भी स्वामीकी ही घोषणा करे ॥ ५३१ ॥ राजाकी आज्ञाका कभी उल्लंघन न करे ॥ ५३२ ॥ जैसी आज्ञा हो, उसीके अनुसार कार्य करे ॥ ५३३ ॥

नास्ति बुद्धिमतां शत्रुः ॥ ५३४ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ ५३५ ॥ क्षमावानेव सर्वं साधयति ॥ ५३६ ॥ आपदर्थं धनं रक्षेत् ॥ ५३७ ॥ साहसवतां प्रियं कर्तव्यम् ॥ ५३८ ॥

श्वः कार्यमद्यः कुर्वीत ॥ ५३९ ॥ आपराह्णिकं पूर्वाह्न एव कर्तव्यम् ॥ ५४० ॥ व्यवहारानुलोमो धर्मः ॥ ५४१ ॥ सर्वज्ञता लोकज्ञता ॥ ५४२ ॥ शास्त्रज्ञोऽप्यलोकज्ञो मूर्खतुल्यः ॥ ५४३ ॥

बुद्धिमान् पुरुषोंका कोई शत्रु नहीं होता ॥ ५३४ ॥ अपने दोषको कभी प्रकाशित न करे ॥ ५३५ ॥ क्षमाशील पुरुष ही सब कार्योंको साध लेता है ॥ ५३६ ॥ आपत्ति समयमें काम आनेके लिये धनकी रक्षा करे ॥ ५३७ ॥ साहसी पुरुषोंको, कर्तव्य बहुत प्रिय होता हैं ॥ ५३८ ॥ कल कियेजानेवाले कार्यको आज ही करलेवे ॥ ५३९ ॥ दोपहरके बाद कियेजाने वाले कामको दोपहरके पहिले ही करलेवे ॥ ५४० ॥ व्यवहारके अनुसार ही धर्म होता है ॥ ५४१ ॥ लोकज्ञताको सर्वज्ञता समझना चाहिये ॥ ५४२ ॥ शास्त्रको जाननेवाला भी जो पुरुष, लोक व्यवहारमें पटु नहीं होता, वह मूर्खके समान है ॥ ५४३ ॥

शास्त्रप्रयोजनं तत्त्वदर्शनम् ॥ ५४४ ॥ तत्त्वज्ञानं कार्यमेव प्रकाशयति ॥ ५४५ ॥ व्यवहारे पक्षपातो न कार्यः ॥ ५४६ ॥ धर्मादपि व्यवहारो गरीयान् ॥ ५४७ ॥ आत्मा हि व्यवहारस्य साक्षी ॥ ५४८ ॥ सर्वसाक्षी ह्यात्मा ॥ ५४९ ॥ न स्यात्कूटसाक्षी ॥ ५५० ॥ कूटसाक्षिणो नरके पतन्ति ॥ ५५१ ॥ प्रच्छन्नपापानां साक्षिणो महाभूतानि ॥ ५५२ ॥ आत्मनः पापमात्मैव प्रकाशयति ॥ ५५३ ॥

सब वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान करवाना ही शास्त्रका प्रयोजन होता है ॥ ५४४ ॥ कार्य अर्थात् लोकव्यवहार ही उस यथार्थ ज्ञानको प्रकाशित करता है ॥ ५४५ ॥ व्यवहारमें कभी पक्षपात न करना चाहिये ॥ ५४६ ॥ व्यवहार धर्मसे भी बढकर होता है ॥ ५४७ ॥ आत्मा ही व्यवहारका साक्षी समझना चाहिये ॥ ५४८ ॥ क्योंकि आत्मा ही सबका साक्षी होता है ॥५४९॥ कपटसाक्षी कभी न बने ॥ ५५० ॥ कपटसाक्षी नरकमें गिरते है ॥ ५५१ ॥ छिपकर पाप करनेवाले पुरुषके, ये महाभूत ही साक्षी होते हैं ॥ ५५२ ॥ अपने कियेहुए पापको अपना आत्मा ही प्रकट करदेता है ॥ ५५३ ॥

व्यवहारेऽन्तर्गतमाकारस्सूचयति ॥ ५५४ ॥ आकारसंवरणं देवानामशक्यम् ॥५५५॥ चोरराजपुरुषेभ्यो वित्तं रक्षेत् ॥५५६॥ दुर्दर्शना हि राजानः प्रजा नाशयन्ति ॥ ५५७ ॥ सुदर्शना हि

राजानः प्रजा रञ्जयन्ति ॥५५८॥ न्याययुक्तं राजानं मातर मन्यन्ते प्रजाः॥५५९॥तादृशस्स राजा इह सुखं ततस्स्वर्गं प्राप्नोति ॥५६०॥

व्यवहारके समय, आन्तरिक भावोंको, आकृति सूचित करदेती है ॥ ५५४ ॥ आकारका छिपाना (अर्थात् आकृतिपर प्रकट होनेवाले भावोंको छिपाना) देवताओंके लिये भी अशक्य है ॥ ५५५ ॥ चोर और राजपुरुषोंसे अपने धनकी रक्षा करे ॥ ५५६ ॥ कठिनतासे दर्शन देनेवाले राजा अपनी प्रजाओंको नष्ट करादेते हैं ॥ ५५७ ॥ सरलतासे दर्शन देनेवाले राजाजन, अपनी प्रजाओंको सदा प्रसन्न रखते हैं ॥ ५५८ ॥ न्याययुक्त राजाको, प्रजाजन अपनी माताके समान मानते हैं ॥ ५५९ ॥ उस प्रकारका वह राजा, इस लोक में सुखको भोगता है; और मृत्यु के अनन्तर स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ५६० ॥

अहिंसालक्षणो धर्मः ॥ ५६१ ॥ स्वशरीरमपि परशरीरं मन्यते साधुः ॥ ५६२ ॥ मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् ॥ ५६३ ॥ न संसारभयं ज्ञानवताम् ॥ ५६४ ॥ विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते ॥ ५६५ ॥ सर्वमनित्यं भवति ॥ ५६६ ॥ कृमिशकृन्मूत्रभाजनं शरीरं पुण्यपापजन्महेतुः ॥५६७॥ जन्ममरणादिषुदुःखमेव ॥५६८॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति ॥ ५६९ ॥ क्षमायुक्तस्य तपो विवर्धते ॥ ५७० ॥ तस्मात्सर्वेषां कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ५७१ ॥

॥ इति चाणक्यसूत्राणि ॥

अहिंसा ही मुख्य धर्म है ॥ ५६१ ॥ अपने शरीरको भी सज्जन परशरीरके समान मानता है ॥ ५६२ ॥ मांसखाना सबके लिये अयुक्त है ॥ ५६३ ॥ ज्ञानी पुरुषोंको संसारका भय नहीं होता ॥ ५६४ ॥ विज्ञानरूपी दीपकसे संसारका भय निवृत्त होजाता है ॥ ५६५ ॥ संसारमें सब ही वस्तु अनित्य हैं ॥ ५६६ ॥ कीडे मल और मूत्रका स्थान यह शरीर ही, पुण्य और पापमय जन्मोंका कारण होता है ॥ ५६७ ॥ जन्म और मरण आदिमें दुःख ही दुःख है ॥ ५६८ ॥ तपसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ५६९ ॥ क्षमाशील पुरुषका तप सदा बढता रहता है ॥ ५७० ॥ इसीसे सबकी कार्य सिद्धि होती है ॥ ५७१ ॥

चाणक्यप्रणीत सूत्र समाप्त